चार्वाकदर्शन की सुखवादीविचारधारा : एक मीमांसा
HEDONISM IN CĀRVĀKAPHILOSOPHY : AN ANALYSIS

डॉ॰ निरुपमा त्रिपाठी

Abstract

Cārvāka otherwise called 'Lokāyata' also emerged as one of the earliest materialist schools of thought. 'Lokāyata' as the name infers is the philosophy of the real world. It has been categorised among the atheist philosophies of India. Cārvāka is an ancient Indian philosophical school of hedonistic materialism having a belief in material pleasures. They have considered material pleasures as the only true purpose of human existence and denied any obligation for an after life. The major doctrines of the Cārvāka including hedonism have been criticized and condemned. Yet, desire of having pleasures is not unjustified at all. The culture to enjoy the material and material pleasures had been universal. The natural human tendency towards the means of pleasure and pleasure itself is described in Vedas, Purāṇas, Rāmāyaṇa, Mahābhārata, etc. Some of the western thinkers as well as the Indian thinkers have supported altruistic headonism against egoistic hedonism. Vātsyāyana has described hedonism in a balanced way. There are so many proofs that oppose that Cārvākas are absolute and self-centered in their thoughts. This study aims to establish that Cārvāka philosophy is not commendable, with the help of a comparative study between western and Indian schools of thought on hedonism.

भूमिका (Introduction) :

सभी दर्शन किसी न किसी रूप में संसार के मूल पदार्थों पर विचार करते हैं। इन्हें ही तत्त्व की संज्ञा दी गयी है। तत्त्वों के सम्यक् ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा उसके विकृत रूपों को जानने और उस विकृति में ही लिप्त रहने से प्राणी बन्धन में पड़ता है। बन्धन और मोक्ष ही वस्तुतः दर्शनशास्त्र के

प्रमुख प्रतिपाद्य हैं। इसी सन्दर्भ में शरीरनाश अर्थात् मृत्यु के पश्चात् आत्मा के अस्तित्व एवं नास्तित्व पर भी बहुत विमर्श हुआ है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि नचिकेता ने यमराज से तृतीय वर के रूप में इस निर्णय का ज्ञान माँगा कि मुत्यु के पश्चात् आत्मा का अस्तित्व रहता है अथवा नहीं–

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीय।।[1]

चार्वाक दर्शन की गणना भरतीय नास्तिक दर्शनों में होती है। नास्ति परलोकः तत्साक्षीश्वरो वा इति मतिरस्य[2], इस व्याख्या के आधार पर जो अनीश्वरवादी, अविश्वासी अथवा वेदों की प्रमाणिकता, पुनर्जन्म और परमात्मा में विश्वास नहीं करता उसे नास्तिक कहा जाता है। आचार्य मनु ने नास्तिकों की निन्दा करते हुए कहा है कि वेद को श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए, ये दोनों सब विषयों में तर्क से रहित हैं, क्योंकि इन्हीं से धर्म की उत्पत्ति होती है तथा धर्म के मूल इन दोनों का जो तर्क के सहारे अपमान करते हैं वे ही नास्तिक और वेदनिन्दक हैं, वे त्याज्य हैं–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ।।
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।।[3]

चार्वाक मतानुयायी यज्ञ, वेद और सन्यासादि की इस प्रकार निन्दा करते हैं–

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता।।[4]

इनके अनुसार वेदों के तीन ही कर्ता हैं भाँड़, धूर्त और निशाचर–

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्भरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।।[5]

वस्तुतः चार्वाक एक भारतीय विचारधारा है जो जड़वादियों एवं सुखवादियों के लिए व्यवहृत होती है। ये वृहस्पति के मतानुयायी हैं–

वृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिकशिरोमणिना चार्वाकेण तस्य दूरोत्सारित्वात्।[6]

चार्वाक एक ऋषि का नाम था, ऐसा भी कतिपय विद्वान् मानते हैं। यह शब्द चर्व धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है चबाना। इस विचारधारा में खाने–पीने की ही प्रधानता है। अतः इसका नाम चार्वाक पड़ा। अन्य विद्वानों के अनुसार चारु वाक् होने के कारण ये चार्वाक कहलाए।[7] पूर्णतया भौतिकता में विश्वास

करने के कारण इस सिद्धान्त को भौतिकतावाद के नाम से भी जाना जाता है। इन्हें जड़वादी भी कहा जाता है क्योंकि इनके अनुसार मन एवं चैतन्य की उत्पत्ति जड़ से हुई है। सुख के सम्बन्ध में इनकी अत्यन्त व्यावहारिक धारणा है। एकमात्र प्रत्यक्ष को मानने वाले इस मत में मनुष्य का शरीर चार तत्त्वों से मिलकर बना है– पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। मृत्यु के पश्चात् शरीर के सभी तत्त्व अपने–अपने मूल में समाहित हो जाते हैं। ये आकाश को इसलिए नहीं मानते क्योंकि इसका प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञान नहीं होता है। इस सिद्धान्त को लोकायत भी कहते हैं क्याकि यह लोक में स्वतः व्याप्त तथा लोक द्वारा अनुसृत दर्शन है।

विश्लेषण का उद्देश्य (Aim of proposed work):

चार्वाक से पूर्व उपनिषदों का युग था। उस युग में उपलब्ध सभी सम्प्रदायों में अनित्यता के भाव को ही स्वीकृति थी। उपनिषदों में अनेकशः इसके वर्णन प्राप्त होते हैं कि जीवन और पुनर्जन्म दोनों ही दुःखमय हैं। संसार के पदार्थ प्रलोभन देकर केवल दुःख का कारण बताते हैं–

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते।।[8]

संसार की क्षणभंगुरता को जगद्वयापार, व्यवहार, प्रपंच आदि नाम दिए गये। जो कामनाओं का आदर करता है वही उसके वशीभूत होकर पुनः–पुनः जन्म लेता है, जिनकी भोग–दृष्टि नहीं है वे ही जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त होते हैं–

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।।[9]

सम्भवतः इन्हीं विचारधाराओं के विरोध में भैतिकवाद अथवा जड़वाद सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने भौतिक सुख को ही जीवन का सर्वस्व तथा उसका परम लक्ष्य माना। मनुष्य का अस्तित्व शरीर में ही है। अतः इसके द्वारा ही सुख–प्राप्ति की जा सकती। परलोक की आशा में इस लोक के सुखों को नहीं त्यागा जा सकता। वे दृष्टान्त देते हैं–

वरमद्य कपोतः न श्वो मयूरः।[10]

इन्होनें कहा कि न तो स्वर्ग है और न ही अपवर्ग अर्थात् मोक्ष। इनके अनुसार परलोक में रहने वाली आत्मा भी नहीं है–

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।[11]

भारत में चार्वाक के आक्षेपों को प्रायःसभी दर्शनों में दूर करने का प्रयास किया गया है।विशेष रूप से इसके सुखवाद को घृणा दृष्टि ही प्राप्त रही तथा यह दर्शन सर्वथा निन्दित ही रहा किन्तु, स्वार्थ रहित सुख की कामना सदैव

निन्दिनीय नहीं हो सकती। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में– ''... किन्तु एक ऐसी दर्शन–पद्धति जिसे शताब्दियों तक गम्भीर रूप में मान्यता प्राप्त रही हो, इतनी अधिक असंस्कृत नहीं हो सकती।'' वस्तुतः चार्वाकों द्वारा किये गये वेद–निन्दा वाले पक्ष के अतिरिक्त इनके अन्यान्य विचार, मुख्यतः सुखवाद पर आधारित भौतिकतावाद कटु आलोचना नहीं, अपितु पुनरीक्षण की अपेक्षा रखते हैं। अतः प्रस्तुत शोध–प्रपत्र में चार्वाकों के सुखवाद की तुलनात्मक विश्लेषण पूर्वक मीमांसा ही गई है।

तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis):

भौतिक सुखों के साधनों को आदर्श रीति से अर्जित कर उसके उपभोग की संस्कृति विश्वजनीन है। यह सत्य है कि चार्वाकों ने जीवन में सर्वाधिक महत्त्व सुख को दिया। उनके अनुसार यद्यपि सुखों की उत्पत्ति सांसारिक विषयों के साथ होती है तथा वे दुःखों से भी भरे रहते हैं, किन्तु केवल इस कारण से सुखों का त्याग मूर्खता है। धान की बालियों को कोई इस कारण से नहीं छोड़ देता क्योंकि उसमें भूसा और कुण्डा है–

> त्याज्यं सुखं विषयसंगमजन्म पुंसां दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैषा।
> व्रिहिञ्जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान् को नाम
> भोस्तुषकणोंपहितान्हितार्थी।।[12]

वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक देवताओं की स्तुति भौतिक शक्तियों एवं सुखोपभोग के संसाधन प्राप्ति हेतु भी की गयी है। सुखी जीवन–निर्वाह धन/सम्पत्ति के बिना सम्भव नहीं। अतः उसके लिए अग्नि की स्तुति इस रूप में की गयी है–

> अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
> यशसं वीरवत्तमम्।।[13]

एक अन्य मन्त्र में पृथ्वी से पशु, अश्व, पक्षी, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और वर्चस्व प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गयी है–

> यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
> गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।[14]

इसी प्रकार अन्यान्य मन्त्र वेदों में पाए जाते हैं जो सुख एवं सुख के संसाधनों की प्राप्ति हेतु मनुष्य की स्वभाविक कामना को प्रकट करते हैं तथा यह कामना कभी भी गर्हित नहीं समझी गई है।

रामायण में भी भोग– सामग्री को जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण होने का उल्लेख है। श्रीराम के वनगमन के समय दशरथ उन्हें सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों से सम्पन्न करके वन भेजने की बात कहते हैं –

भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिश्यति।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान् रामः संसाध्यतामिति।।[15]

अपने पुत्र के सुखी जीवन के लिए भौतिक संसाधनों की इच्छा एक पिता के लिए नितान्त स्वभाविक है। महाभारत में कहा गया है कि जो कायर और नपुंसक है वह न तो धन उपार्जित कर सकता है और न ही उसका भोग कर सकता है–

न क्लीबो वसुधां भुङ्क्ते न ही क्लीबो धनमश्नुते।
न क्लीबस्य गृहे पुत्राः मत्स्याः पंक इवासते।।[16]

स्पष्ट है कि संसाधनों का उर्पाजन एवं उसका भोग जीवन में महत्त्वपूर्ण है।

पुराणों में भी ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जो मनुष्य– जीवन में सुखोपभोगों की आवश्यकता सूचित करते हैं। वायु एवं बह्माण्ड पुराण में वर्णित है कि शरीरिक सौन्दर्य की वृद्धि हेतु स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती थीं।[17] विष्णु पुराण में कहा गया है कि आभूषणों की कभी समाप्ति न हो इसके लिए लक्ष्मी से प्रार्थना की जाती थी।[18] सुखी जीवन–यापन हेतु विविध उत्सवों और महोत्सवों का भी उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है।19ये सभी सुख–सधन इहलोक के लिए ही थे।

पाश्चात्त्य दर्शन में स्वार्थमूलक सुखवाद :

पाश्चात्त्य दर्शन में भी सुख को केन्द्र में रखकर कई सिद्धान्तों की स्थापना हुई। ग्रीस के अरिस्टिपस ने जिस सुखवाद की स्थापना की उसे निकृष्ट सुखवाद के नाम से जाना जाता है। इनके अनुसार व्यक्तिगत सुख ही मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। इस सिद्धान्त में सुखों में गुणात्मक भेद नहीं होता। मदिरापान से तथा अध्ययन से प्राप्त होने वाले दोनों ही सुख समान हैं। तीव्रता के कारण से ये मानसिक सुख की अपेक्षा शारीरिक सुख पर अधिक बल देते हैं। इसी कारण यह सुखवादी सिद्धान्त निकृष्ट स्वार्थवाद भी कहलाया। इस सुखवाद में वर्तमान का सुख ही सर्वोपरि है।ये ''खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ (Eat, drink and be merry)'' की धारणा में विश्वास करते हैं। इनकी दृष्टि में ज्ञान प्रसार में अपना जीवन समर्पित करने वाले सुकरात मूर्ख हैं। हेल्वेशियन नामक दार्शनिक के भी यही विचार हैं। ये विचार चार्वाकों के बहुप्रसिद्ध इस विचार से समानता रखते हुए प्रतीत होते हैं जिसे वृहस्पिति प्रदत्त बताया गया है–

यावज्जीवेत्सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।[20]

पाश्चात्त्यों में उत्कृष्ट स्वार्थमूलक सुखवाद का सिद्धान्त भी प्राप्त होता है। यह एपिक्यूरस के मत पर आधारित है। इनके अनुसार भी यद्यपि स्वार्थवाद ही परम धर्म है तथापि भावना एवं बुद्धि में से इन्होंने बुद्धि को श्रेष्ठतर सुख–साधन माना। सुख समस्त मानसिक एवं शारीरिक कष्ट का अभाव है जिसे इच्छाओं को

सीमित करके, भावनाओं को आदर्श बुद्धि द्वारा नियन्त्रित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। वही सुख स्थायी होता है।[21]

पाश्चात्त्य दर्शन में परार्थमूलक सुखवाद :

स्वार्थमूलक सुखवाद के विपरीत अर्वाचीन पाश्चात्त्य विचारकों ने परार्थवादी सुखवाद का समर्थन किया। इसके सिद्धान्त का सार था अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख (Greatest happiness of the greatest number)। समष्टि का अधिकतम सुख ही इनका नैतिक मापदण्ड है। इन्हें उपयोगितावाद के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस मत का लक्ष्य मानव कल्याण या उपयोग है। परार्थवादी सुखवाद में भी दो मत मिलते हैं बेन्थम और मिल के। बेन्थम के अनुसार सुख में गुणत्मक भेद नहीं है। वहाँ परिमाण का ही भेद होता है। सुखानुभूति गुण की दृष्टि से समान है। अतः यह निकृष्ट परार्थवादी सुखवाद है। इसके विपरीत मिल ने सुख के गुणों में भेद माना है। अतः उनका मत परार्थवादी सुखवाद कहलाया। मनुष्य की श्रेष्ठता के विरुद्ध सुख हेय हैं। मिल के अनुसार एक असन्तुष्ट सुकरात (बुद्धिमान् व्यक्ति) होना अधिक अच्छा है, एक सन्तुष्ट मूर्ख की तुलना में। मिल निम्न स्तरीय सुख के विरोधी हैं।[22]

वात्स्यायन का धर्मसम्मत सुखवाद :

प्रस्तुत प्रसङ्ग में भारतीय परम्परा में कामसूत्र नामक ग्रन्थ के प्रणेता वात्स्यायन के विचार उल्लेखनीय हैं जिन्होंने शिष्ट एवं नैतिक कामनाओं की चर्चा करते हुए सन्तुलित सुखवाद का वर्णन किया है। यद्यपि वात्स्यायन ईश्वरवादी थे तथा परलोक में भी विश्वास रखते थे किन्तु मोक्ष को इन्होंने भी पुरुषार्थों में स्थान नहीं दिया–

> शतायुर्वै पुरुषो विभज्यो कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत।[23]

वात्स्यायन वेदों के विरोधी भी नही हैं। उन्हांने धर्म के ज्ञान हेतु विद्वानों को वेद का आश्रय लेने के लिए कहा तथा इनके अनुसार साधारण मनुष्य धर्मज्ञों के आश्रय से धर्म का ज्ञान प्राप्त करें। जो धर्म के मर्म को समझता है वही काम के तत्त्व को भी समझ सकता है। इसीलिए वात्स्यायन श्रुति और स्मृति के समन्वय की बात करते हैं–

> तं श्रुतेर्धर्मज्ञसमवायाच्च प्रतिपद्येत।[24]

मनुस्मृतिकार ने भी श्रुति एवं स्मृति में बताए गए सदाचार को ही परम धर्म कहा है। इसीलिए व्यक्ति को किसी भी दशा में सदाचार का त्याग नहीं करना चाहिए–

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।[25]

सुखों की प्राप्ति अर्थ के बिना नहीं हो सकती। अतः धर्म पूर्वक विद्या, भूमि, सुवर्ण, पशु आदि को प्राप्त करना चाहिए। प्राप्ति के पश्चात् उसका संरक्षण और उसकी वृद्धि भी करनी चाहिए–

विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः।[26]

धर्म का बोध कराने हेतु शास्त्र की उपयोगिता पर भी वात्स्यायन ने बल दिया है। इतना ही नहीं इनके अनुसार अर्थ–सिद्धि के लिए सम्यक् उपाय बताने वाला अर्थशास्त्र भी होना चाहिए–

धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिदायकं शास्त्रं युक्तम्। उपायपूर्वकत्वादर्थसिद्धेः। उपायप्रतिपत्तिः शास्त्रात्।[27]

संसार में कुछ भी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। जो पुरुष प्रयत्न नहीं करता वह सुख भी नहीं प्राप्त कर सकता–

अवश्यं भाविनोऽप्यर्थस्योपायपूर्वकत्वादेव। न निष्कर्मणों भद्रमस्तीति वात्स्यायन।[28]

यह विचार सुख के प्रति वात्स्यायन के नैतिक दृष्टिकोण को ही इंगित कर रहा है।

निष्कर्ष (Conclusion):

स्पष्ट है कि चार्वाकों की सुख प्राप्ति के प्रति मनुष्य की इच्छा में विश्वासपूर्ण धारणा न तो हेय है और न ही अस्वाभाविक। इनका सुखवाद कथमपि निकृष्ट सुखवाद नहीं कहला सकता, अन्य मतों से इनके सुख की अवधि, उसकी सीमा तथा स्वरूप में अन्तर अवश्य है। मीमांसकों ने कर्म काण्डों की पुष्टि की। ये स्वर्ग, नरक, अदृष्ट आदि अनेक तत्त्वों को मानते हैं। स्वर्ग में अनन्त सुखों की प्राप्ति होती है यह उपनिषदों में भी वर्णित है–

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।[29]

यदि कर्मों का भोग ही जीवन है तो मनुष्य ऐसे कर्मों के प्रति ही प्रवृत्त होते हैं जिनसे सुख की प्राप्ति होती है। मीमांसकों की यह स्वर्गेषणा सुख–प्राप्ति के लिए ही है। चार्वाक स्वर्ग, नरक आदि को नहीं मानते क्योंकि इसे मानने में कोई प्रमाण नहीं है। उनका सुख वर्तमान में ही प्राप्त होने योग्य है और उस सुख की अवधि भी वर्तमान तक ही है। उसकी सीमा भी इहलोक पर्यन्त ही है। मृत्यु के

बाद तो कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता। ऐसी दशा में मृत्यु के पश्चात् कर्म–फल–भोग सम्भव ही नहीं है।स्वरूपतः इनका सुखवाद पूर्णतया निरंकुश भी नहीं है। कुछ चार्वाक मतानुयायी राजा को ईश्वर मानते थे–

लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशो नापरः स्मृतः।
देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते।।[30]

चार्वाकों की ईश्वर के प्रति अनास्था केवल उसका प्रमाणों द्वारा सिद्ध न होने के कारण ही है। राजा को ईश्वर मानने से स्पष्ट है कि उनका सामाजिक मर्यादा एवं नियमों में विश्वास था। इनके ऐसे विचार ही इनकी स्वार्थान्धता एवं निरंकुशता के विरोध में प्रमाण हैं। अतः चार्वाकों का सुखवाद निन्दनीय नहीं होना चाहिए।

Notes and References :

[1] गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, कठोपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069, 1/1/20।

[2] आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत–हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, ई. 1973, पृष्ठ 521।

[3] भट्ट रामेश्वर, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007, 1/10,11।

[4] माधवाचार्य, हिन्दी व्याख्या–शर्मा 'ऋषि' उमाशंकर, सर्वदर्शनसंग्रह, चौख्मबा विद्या भवन वाराणसी, ई. 1994, पृष्ठ 20।

[5] वही पृष्ठ 21।

[6] वही पृष्ठ 3।

[7] चट्टोपाध्याय सतीश चन्द्र एवं दत्त धीरेन्द्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना, ई. 1984, पृष्ठ 43।

[8] गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, कठोपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण–संवत् 2069, 2/1/2।

[9] गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण–संवत् 2069, 3/2/2।

[10] चट्टोपाध्याय सतीश चन्द्र एवं दत्त धीरेन्द्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना, ई. 1984, पृष्ठ 52।

[11] माधवाचार्य, हिन्दी व्याख्या–शर्मा 'ऋषि' उमाशंकर, सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, ई. 1994, पृष्ठ 20।

[12] सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, ई. 1994, पृष्ठ 06।

[13] शर्मा, श्रीराम, ऋग्वेद (प्रथम खण्ड), संस्कृति संस्थान बरेली, 2010, 1/1/3।

[14] शर्मा, श्रीराम, अथर्ववेद (प्रथम खण्ड), संस्कृति संस्थान बरेली, 2010, 12/1/5।

[15] श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, 36/9।

[16] महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2075, शान्ति पर्व, 14/13।

[17] राय सिद्धेश्वरी नारायण, पुराण परिशीलन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, ई. 2008, पृष्ठ 393।

[18] वही

[19] वही, पृष्ठ 409।

[20] सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, ई. 1994, पृष्ठ 21।

[21] वर्मा अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, ई. 2017, पृष्ठ 161, 162।

[22] वर्मा अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, ई. 2017, पृष्ठ 166, 167।

[23] वात्स्यायन, हिन्दी व्याख्या–यशोधर, कासूत्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, संवत् 2053, 1/2/1।

[24] वही, 1/2/8।

[25] भट्ट रामेश्वर, मनुस्मृति, चौख्मबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007, 1/108।

[26] वात्स्यायन, हिन्दी व्याख्या–यशोधर, कासूत्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, संवत् 2053, 1/2/9।

[27] वही, 1/2/16।

[28] वही, 1/2/31।

[29] गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, कठोपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण–संवत् 2069, 1/1/12।

[30] सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, ई. 1994, पृष्ठ 9।